श्रावण कृष्ण अमावस्या, रविवार, दिनांक - ०६-०९-१९६४
श्रावकाचार, गाथा - २२ से २९, प्रवचन-१४

.... श्रावक व्रत अथवा उपासक संस्कार। श्रावकों को दिन-प्रतिदिन छह / षट्कर्म करना इसकी व्याख्या चलती है। समझ में आया? हमेशा देवपूजा है। है वह शुभभाव, परन्तु ज्ञानी को आत्मा के भानसहित होने पर भी, वास्तव में वह शुभभाव मोक्ष का कारण न होने पर भी... अमरचन्दजी! वह शुभभाव आता है। समझ में आया? श्रावक को पंचम गुणस्थान के योग्य षट्कर्म—देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान, हैं यह विकल्प शुभराग। वास्तव में उसे संवर और निर्जरा का कारण ज्ञानी मानता नहीं, तथापि वह भाव आये बिना रहता नहीं। उस गुणस्थान के योग्य उसकी वह दशा है, ऐसा यहाँ वर्णन किया जाता है। कहो, समझ में आया? २२

मुमुक्षु : ... मोक्ष कारण नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष का कारण नहीं।

मुमुक्षु : तो फिर परम्परा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा भी नहीं। परन्तु आये बिना रहता नहीं। परम्परा का आरोप दिया जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है न, निमित्त। निमित्त को आरोप दिया जाता है। जरा सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा अपना ज्ञान चैतन्य आनन्दस्वरूप, उसे अन्तर अवलम्बन कर जितना ज्ञान, श्रद्धा और स्थिरता हो, उतना ही संवर, निर्जरा और मोक्ष का मार्ग जानता है। समझ में आया? धर्मी जीव अपनी चैतन्य सत्ता ज्ञायकभाव और पूर्णानन्दस्वरूप के अवलम्बन से जितना ज्ञान हो, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन और उसके अवलम्बन से जितनी स्थिरता हो, उसे वास्तव में संवर, निर्जरा अर्थात् मोक्ष का मार्ग ज्ञानी मानता है। अमरचन्दजी! आहाहा! जो ज्ञान शास्त्र के अवलम्बन से परावलम्बी हो, उस ज्ञान को भी धर्मी मोक्ष का कारण नहीं मानता।

मुमुक्षु : परसत्तावलम्बी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का अवलम्बी है न। यहाँ तो इसमें से अभी यह निकालना है, यह राग है न वह। समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा चैतन्य का सूर्य अकेला, ऐसे स्वभाव को अवलम्ब कर जो सम्यग्दर्शन हो और उसका अन्तर अवलम्ब कर जितना ज्ञान प्रगट हो, उसे अवलम्ब कर जितनी स्थिरता, शान्ति, अविकारीदशा हो, उसे ही धर्मी मोक्ष का मार्ग जानता और मानता है। बीच में जितना यह ज्ञान परालम्बी अन्दर हो, उसे जानता अवश्य है परन्तु उसे मोक्ष का मार्ग नहीं मानता। आहाहा! अमरचन्दजी! बारह अंग का ज्ञान परावलम्बी, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। भाई! भगवान अकेला चैतन्यस्वरूप सहजानन्द की मूर्ति, उसके अवलम्बन से जो ज्ञान अन्तर में से प्रगट हुआ, उतना ही ज्ञान का भाव मोक्ष और संवर तथा निर्जरा का कारण है। जितना परावलम्बी-परसत्तावलम्बी शास्त्र आदि का ज्ञान हो, वह हो निमित्तरूप से, परन्तु उसे मोक्ष का मार्ग नहीं मानता। इसी प्रकार जितना परावलम्बी श्रद्धा का विकल्प उठे—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नव तत्त्व के भेद का विकल्प—उसे होता अवश्य है, परन्तु वह श्रद्धा परावलम्बी है, इसलिए धर्मी उसे मोक्ष का कारण नहीं मानता। आहाहा! तथापि वह उसकी भूमिका में निश्चयसहित में ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता। और जितना स्वरूप में ज्ञान चैतन्य ज्योति को अवलम्ब कर शान्ति—अकषाय की परिणति / पर्याय हो, वह वास्तविक संवर, निर्जरा और मोक्ष का मार्ग है। जितना यह छह प्रकार के षट्कर्म का राग आता है, उसे वास्तव में ज्ञानी मोक्षमार्ग नहीं मानता। शोभालालभाई! यह बहुत सूक्ष्म बातें हैं। सेठ!

मुमुक्षु : अभी तक तो उल्टा ही मानते रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टा ही मानते रहे। परन्तु आये बिना रहता नहीं, इसलिए यहाँ कहते हैं, देखो! २२वीं गाथा। है न २२वीं? यह चौथा बोल चलता है। तीन बोल हो गये। श्रावक को हमेशा देवपूजा का भाव, परावलम्बी होने पर भी, स्वावलम्बी के अभाव में पूर्ण वीतरागता नहीं; इसलिए वह भाव आये बिना नहीं रहता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ....में बैठे आवे। भगवान की पूजा करे। व्यवहार चरणानुयोग की पद्धति का कथन है न अभी? चरणानुयोग की पद्धति का कथन राग करे, जाए, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो ऐसा भाव आवे, तब देवपूजा के स्थान में वह वर्तता है, ऐसा है। पद्धति, चरणानुयोग में कथनपद्धति भिन्न है। समझ में आया? घर बैठे-बैठे भगवान की पूजा का भाव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐई! सीधे डालो, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

यह भाव आये बिना नहीं रहता। इसलिए आचार्य महाराज ने सातवीं गाथा में कहा, दिन-प्रतिदिन। सातवीं गाथा में आया था। दिन-प्रतिदिन षट्कर्म होते हैं। है न? **'देवपूजा गुरुपास्ति: स्वाध्याय: संयमस्तप:। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।'** महामुनि थे, जंगल में बसनेवाले भावलिंगी सन्त थे। छठे गुणस्थान में विकल्प उठा और यह शास्त्र वाणी द्वारा शास्त्र रच गया। उसके कर्ता भी ज्ञानी नहीं। शास्त्र के रचनेवाले ज्ञानी नहीं हैं। जो विकल्प आया है, उसमें व्यापक होकर यह संवर-निर्जरा है, ऐसा नहीं मानते।

वास्तव में ज्ञानी का व्याप्य-व्यापक तो स्वभाव के साथ व्याप्य-व्यापक है। समझ में आया? परन्तु राग आवे, उसे पर-व्यवहार व्यापकरूप से जानता हुआ उस आचरण को बन्ध का कारण जानते हैं। आहाहा! भारी बातें, भाई! क्या कहा? समझ में आया? देव पूजा। ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। उसे गाँव में मन्दिर हो, पूजा करने जाए, ऐसा भाव आता है। दिन-प्रतिदिन पंचम गुणस्थान के योग्य ऐसा भाव उसे होता है। यह विवाद है न। होता है, इसलिए उसे मोक्ष का कारण है - ऐसा नहीं है। अमरचन्दजी! परम्परा का आरोप किया जाता है। राग तो वास्तव में राग का ही कारण है। आहाहा!

यह तो अपने पंचास्तिकाय में आ नहीं गया? १६४ गाथा। दोष की परम्परा का कारण राग है। जब तक राग है, तब तक उसे संवर, निर्जरा इतने से होगी नहीं। इतना आस्रवभाव है, परन्तु वह आस्रवभाव गृहस्थ को देव सेवा में, देव की पूजा में आये बिना नहीं रहता। इसी प्रकार गुरु सेवा। धर्मात्मा सन्त मुनि निर्ग्रन्थ महन्त, आत्मज्ञानी ध्यानी महन्त मुनि की भी सेवा करने का भाव श्रावक को (आये बिना नहीं रहता)। निश्चय से सेवा तो स्वयं की है। निश्चय से अपने स्वरूप की सेवा है परन्तु व्यवहार से गुरु की

सेवा का भाव हमेशा दिन-प्रतिदिन आये बिना नहीं रहता। उसके-श्रावक के आचरण में व्यवहार आचरण का ऐसा विकल्प उठता है। आहाहा! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : ... तो क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वडेरा कोई दूसरा होगा। कहो, समझ में आया ? धर्मात्मा होवे, उनका भी बहुमान करके... वह भी अभी तो समझने जैसा है। समझ में आया ?

यह तो त्रिकाल की बात है न। महामुनि धर्मात्म धर्म के अधिकरूप से भानवाले -स्थिरतावाले की सेवा का भाव श्रावक को आये बिना नहीं रहता। तीसरा स्वाध्याय। संसार की पुस्तकें हमेशा फिराता है तो यह शास्त्र की पुस्तकों का विकल्प पढ़ने का, वाँचन का (आता है) । है परावलम्बी शास्त्र का ज्ञान। आहाहा! गजब बातें, भाई! समझ में आया ? देवीलालजी! कहाँ गये ? धन्नालालजी! हैं। निश्चय के मार्ग में बीच में व्यवहार आये बिना नहीं रहता। व्यवहार टल जाए तो या तो केवल (ज्ञान) हो जाए और या व्यवहार न हो और अकेला निश्चय न हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। निश्चय नहीं और व्यवहार नहीं तो मिथ्यादृष्टि है। भगवान को अकेला निश्चय हो जाता है और फिर व्यवहार नहीं होता।

मुमुक्षु : ... अकेला व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला व्यवहार होता ही नहीं। यह बात ही सब गप्प है। अभी करते हैं, चौथे, पाँचवें और छठे और व्यवहार मोक्षमार्ग (होता है) । बिल्कुल झूठ बात। पराश्रय से मार्ग, वह परावलम्बी अवलम्बन है, वह वास्तव में मोक्षमार्ग है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह कब ? यह तो व्रतादि के विकल्प को भी जहर कहा है। वह कर्तृत्वबुद्धि से ज्ञानी को व्रत का विकल्प आता नहीं। क्योंकि जिसमें कर्म के निमित्त का लक्ष्य और उपाधि आती है, उस भाव को ज्ञानी क्यों चाहे ? परन्तु वह भाव आये बिना रहता नहीं है।

मुमुक्षु : आवश्यक...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आवश्यक व्यवहार से।

मुमुक्षु : आये बिना रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये बिना रहता ही नहीं, इसलिए चरणानुयोग की पद्धति में अवश्य करनेयोग्य है, ऐसी कथनपद्धति व्यवहारनय से चलती है। निश्चय में तो यह भाव उस काल में उसे आता है परन्तु कर्तृत्वबुद्धि निश्चय से होती नहीं। आहाहा! गजब! यह स्वाध्याय। कहो, स्वाध्याय। श्रावक को पाप के भाव के (धन्धे के) शास्त्र / पुस्तकें फिराता है, उसके गृहस्थाश्रम के, इससे इसका भाव स्वाध्याय करने का दिन-प्रतिदिन आता है। घण्टे, दो घण्टे स्वाध्याय करे, ऐसा भाव उसे होता है, तथापि वह जानता है कि यह परालम्बी भाव है। उस ओर का ज्ञान हुआ, इतना भी अभी परालम्बी है। स्वावलम्बी में मैं स्थिर नहीं हो सकता; इसलिए ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। ऐसी वस्तु की मर्यादा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान तो स्वयं से होता है, वह ज्ञान है। बात ऐसी है। समझ में आया?

अपना ज्ञान, स्वरूप प्रकाश की मूर्ति है, उसमें एकाकार होकर जितना ज्ञान प्रगट हुआ, उतना ही ज्ञान शुद्धता और मुक्ति का कारण है। समझ में आया? कहा था न एक बार? यह उसमें से नहीं? क्या कहलाता है? कलश-टीका। कलश-टीका है न यह? कलश-टीका। आत्मानुभूति का कहा था एक बार। कितना है वह? १३वाँ। १३वाँ है। देखो! १३वाँ श्लोक है। आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। आत्मा का ज्ञानानन्द, उसे अनुसरण कर व्यापकरूप से होकर आनन्द की शान्ति और अविकारी का व्याप्य हो, ऐसा भाव वह वास्तव में अनुभव मोक्ष का मार्ग है।

इस प्रसंग में दूसरा भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। कोई ऐसा मानेगा कि बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। कोई ऐसा कहेगा। **उसका समाधान ऐसा है।** यह कलश-टीका है, भाई अमरचन्दजी! यह कलश है न अमृतचन्द्राचार्य के? उनकी राजमलजी की टीका है। राजमल। इस

टीका में से बनारसीदासजी ने समयसार नाटक बनाया है। यह राजमलजी की टीका ढुंढ़ारी भाषा में है। अभी अपनी ओर से ३३०० पुस्तकें प्रचलित भाषा में प्रकाशित होती है। हिन्दी प्रचलित भाषा में प्रकाशित होती है। अभी देरी लगेगी।

कोई ऐसा कहे कि, **द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है। उसका समाधान ऐसा है। द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।** द्वादशांग ज्ञान 'फुनि' अर्थात् भी, बारह अंग का ज्ञान भी विकल्प है। **उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पठन की कोई अटक (बन्धन) नहीं है।** निश्चय की बात करते हैं। यहाँ अभी व्यवहार की बात चलती है। समझ में आया?

स्वरूप का अनुभव होने के पश्चात् उसे शास्त्र पठन की अटक नहीं है, रोक नहीं। परन्तु जब स्वरूप में स्थिर नहीं हो सके, तब उसे शास्त्र स्वाध्याय का विकल्प परालम्बी होने पर भी, आये बिना नहीं रहता। आहाहा! गजब! समझ में आया? इस कलश की टीका बहुत सरस है। एक-एक कलश की टीका ऐसी सरस की है। बनारसीदास ने पूरा समयसार नाटक लगभग इसमें से बनाया है, नया भी थोड़ा-सा बाद में डाला है।

यहाँ कहते हैं, स्वाध्याय हमेशा दिन-प्रतिदिन होना चाहिए। ये तीन बोल आ गये। अब चौथा अपने संयम चलता है। संयम—चौथा बोल। षट्कर्म में संयम। श्रावक अनुसार। देखो! २२ वीं।

देशाव्रतानुसारेण संयमो ऽपि निषेव्यते।
गृहस्थैर्येन तनैव जायते फलवद्व्रतम्।।२२।।

धर्मात्मा श्रावकों को एकदेश व्रत के अनुसार संयम भी जरूर पालना चाहिए। भोग का थोड़ा-थोड़ा (भाव) प्रतिदिन घटाना चाहिए। प्रतिदिन घटाना चाहिए। इन्द्रियों के विषयों की ओर से झुकाव कम करना, छह काय के जीवों को मारने के भाव भी घटाना। ऐसा संयम देशव्रत के योग्य—पंचम गुणस्थान के योग्य ऐसे विकल्प / भाव ज्ञानी को आये बिना नहीं रहते। उसे चरणानुयोग में ऐसा कहा जाता है कि देशसंयम के भाव करे और पालता है। ऐसा व्यवहारनय के कथन में चरणानुयोग की पद्धति में ऐसा आता है। समझ में आया? **जिससे उनका किया हुआ व्रत फलीभूत होवे।** क्यों? संयम

थोड़ा-थोड़ा हमेशा होवे तो उसके व्रत जो लिये हुए हैं, उनका सफलपना इसके कारण गिनने में आता है। ऐसा भाव पाँचवें गुणस्थान में आये बिना नहीं रहता।

२३वीं। देखो! यह सब संयम के भेद में है। संयम के भेद में श्रावक को ऐसा हमेशा होना चाहिए।

गाथा २३

त्याज्यं मांसं च मद्यं च मधूदुम्बरपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ताः गृहिणो दृष्टिपूर्वकाः।।२३।।

अर्थ : श्रावकों को मद्य, मांस, मधु का तथा पाँच उदुम्बरों का अवश्य त्याग कर देना चाहिए और सम्यग्दर्शनपूर्व इन आठों का त्याग ही गृहस्थों के आठ मूलगुण हैं॥२३॥

गाथा - २३ पर प्रवचन

त्याज्यं मांसं च मद्यं च मधूदुम्बरपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ताः गृहिणो दृष्टिपूर्वकाः।।२३।।

देखो, भाषा डाली है। सम्यग्दर्शनपूर्वक। अमरचन्दजी! भगवान आत्मा निर्विकल्प पूर्णानन्द ज्ञान ज्ञायक। अन्तर ज्ञायकभाव ज्ञान की ऋद्धि अर्थात् प्रसारनेवाला, विकास करनेवाला ऐसा जिसका व्यापकपना और ज्ञायकभाव जिसका व्यापक, ऐसी ज्ञायकभाव की प्रथम दृष्टि धर्मी को करना चाहिए। समझ में आया? जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ कैसी है? चारित्र है, वह स्थिर होना है। तो किसमें स्थिर होना है? राग में? निमित्त में? स्थिर होने का स्थान चिदानन्द ज्ञायकभाव है। अकेला ज्ञायक परमानन्द प्रभु, वह स्थिर होने का स्थान है। ऐसी प्रथम अनुभव में दृष्टि सम्यक् की हुए बिना उसे सच्चा चारित्र और सच्चे व्रत व्यवहार से भी नहीं हो सकते। बराबर है?

कहते हैं, **'दृष्टिपूर्वकाः'** देखो! दृष्टिपूर्वक। अकेले आत्मा के सम्यग्दर्शन के

भान बिना अकेले बारह व्रतादि ले, उसे वास्तव में व्रत नहीं कहते। वह पुण्यबन्ध बाँधता है और मिथ्यादृष्टि रहता है, वह पुण्य में धर्म मानकर परालम्बी दृष्टि में अटका हुआ, निज स्वभाव में, व्यापक में नहीं आता। उसे बारह व्रत के परिणाम अकेले मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध के कारण होते हैं। उसे अबन्ध परिणाम प्रगट नहीं होते। समझ में आया?

'त्याज्यं मांसं च मद्यं' सम्यग्दर्शनपूर्वक इसे माँस का त्याग करना चाहिए। समझ में आया? मद्य / शराब का त्याग करना चाहिए, मधु का त्याग करना चाहिए। और पाँच उदुम्बरों का अवश्य त्याग करना चाहिए। क्योंकि मूल है। व्रतों के अन्दर में यह मूल है। जिसकी जड़ सुरक्षित नहीं है। यहाँ दर्शन की व्याख्या अभी नहीं है। सम्यग्दर्शन का मूल तो ज्ञायकभाव एक है। सम्यग्दर्शन का मूल ज्ञायकभाव वह आश्रय है। परन्तु सम्यग्दर्शन का मूल आश्रय में लेकर प्रगट हुआ, उसको पंचम गुणस्थान के योग्य जो व्रत आदि होते हैं, उनमें यह आठ मूलगुण वे सब व्रत के मूल हैं। व्रत के मूल, हों! स्वभाव में मूल नहीं। समझ में आया? कहो, देवीलालजी!

धर्म का मूल सम्यग्दर्शन। धर्म अर्थात् चारित्र। चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का मूल द्रव्यस्वभाव। ज्ञायकभाव त्रिकाल, वह दर्शन का आश्रय है। ऐसा दर्शन का आश्रय किया होने पर भी दृष्टि मुख्य में—दर्शन में तो दर्शन पर ही दृष्टि है—स्वभाव पर दृष्टि है। ज्ञानी को कभी विकल्प और पर्याय की मुख्यता दृष्टि में नहीं होती। निमित्त और राग और पर्याय की मुख्यता दृष्टि में हो जाए, तब तो दृष्टि मिथ्या हो जाए। दृष्टि में मुख्य तो मूल द्रव्यस्वभाव ही है। परन्तु श्रावक के योग्य जब अन्दर दो कषाय के अभाव की स्थिरता प्रगट हुई है, चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव की है तथा पंचम गुणस्थान में अप्रत्याख्यानी के अभाव की स्थिरता-शान्ति है। स्वावलम्बी। उसकी भूमिका में यह भाव आये बिना नहीं रहता और यह भाव कहा, आठ मूलगुण इसे कहा। मूलगुण अर्थात् वास्तव में जो यह आठ मूलगुण अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की स्थिरता, वह यह मूलगुण नहीं है। यह मूलगुण नहीं है।

यहाँ तो विकल्प की व्रत की मर्यादा जो श्रावक को बारह व्रतादि हैं, ऐसे व्रत के विकल्प में आठ मूलगुण के विकल्प वे मूल हैं, ऐसा कहने में आया। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? चार दिन तो रतनलालजी! गुजराती चलेगी। बाद में हिन्दी।

यह मूलगुण जो कहे हैं न, वे मूलगुण कहीं संवर-निर्जरा नहीं है, शुभराग है। वह मूलगुण अर्थात् उनका आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन में मुख्यता तो निश्चय द्रव्य की दृष्टि होने पर भी, जब श्रावक के योग्य शान्ति का अंश प्रगट हुआ, तब उसे मूलगुण, व्रत के विकल्पों के भाग में उसे आठ मूलगुण का—त्याग का विकल्प वह मुख्य और मूल है। समझ में आया?

इस व्रत के विकल्प के आस्रव के परिणाम में आठ मूलगुण का त्याग, वह मूल है। आठ मूलगुण कहे न? मुनि को अट्ठाईस मूलगुण कहते हैं, वह तो विकल्प है। वह विकल्प है, राग है। अट्ठाईस मूलगुण, वह आस्रव है। परन्तु मूल क्यों कहा? समझ में आया? स्वयं अपने आत्मा के मूल स्वभाव की आश्रय दृष्टि होने पर भी, मुख्यपना तो निश्चय का, स्वभाव का है। वह मुख्यपना जाए और पर्याय तथा राग की मुख्यता दृष्टि में हो तो दृष्टि मिथ्या हो जाए। परन्तु दृष्टि में मुख्यता चैतन्य का अन्दर ज्ञायक का होने पर भी, उसकी भूमिका के योग्य जो बारह व्रत श्रावक को आते हैं, उन बारह व्रत के विकल्प के मूल में आठ मूलगुणरूप त्याग उसके विकल्प को मूल कहने में आता है। उस आस्रव की अपेक्षा से उसे मूल कहने में आता है। समझ में आया?

शास्त्र का हल कठिन है। शास्त्र में किस पद्धति से कथन चलता है और कहने की क्या पद्धति है, उसे न समझे (और) पकड़ ले कि यह मूलगुण है, परन्तु है वह आस्रव। मुनि के अट्ठाईस मूलगुण जो हैं, वे भी आस्रव हैं। संवर-निर्जरा नहीं। परन्तु मूलगुण क्यों कहा?—कि पंचम गुणस्थान के योग्य दशा जहाँ प्रगट हुई, उसे मद्य, माँस, मधु, पाँच उदुम्बरों का अवश्य त्याग होता है। आते हैं न पाँच उदुम्बर के नाम? ऊमर, कठूमर, पाकर, वड और पीपल। इनके अन्दर त्रस जीव होते हैं। इसलिए तीव्र राग के अभाव में इनका त्याग होता है। ऐसा जो शुभराग, उसके व्रत के विकल्प में यह शुभराग आठ मूलगुणसम्बन्धी त्याग, वह शुभराग मूल कहने में आता है। है तो आस्रव। समझ में आया? मित्रसेनजी!

और सम्यग्दर्शनपूर्वक इन आठों का त्याग गृहस्थों के आठ मूलगुण हैं। सम्यग्दर्शनपूर्वक इसकी व्रत विधि के भाव में इन आठ का त्याग तो मूल में आये बिना

रहता नहीं। आठ का—माँस, शराब का त्याग न हो और व्रतादि हो जाए, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया ? यद्यपि यह तो पहले बात आ गयी है कि माँस और शराब का त्याग नहीं, उसे धर्म की शोध की दरकार की दृष्टि नहीं है। आ गया है न पहले ? यह ११वीं गाथा में आया, सात व्यसन में। जिसे सात व्यसन का त्याग नहीं, वह धर्म की अन्वेषणता के योग्य नहीं है। यह ११वीं गाथा में आ गया है।

धर्मार्थिनो ऽपि लोकस्य चेदस्ति व्यसनाश्रय:
जायते न तत: सापि धर्मान्वेषणयोग्यता।।११।।

सात व्यसन—जुआ, माँस, मधु, वैश्या, शिकार, शराब, चौरी और परस्त्री। इनका जिसने त्याग नहीं, वह धर्म की परीक्षा करने का पात्र नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह तो पहली बात। उसकी धर्म की परीक्षा की योग्यता में इनका त्याग होना चाहिए। पुरुषार्थसिद्धि में भी कहा है। ७४वीं गाथा में। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। जिसे सात व्यसन का त्याग नहीं, माँस आदि का त्याग नहीं, वह श्रावक होने के योग्य नहीं है। धर्म की परीक्षा और जैन धर्म प्राप्त करने के योग्य नहीं है। माँस, शराब... समझ में आया ? और परस्त्री, वैश्या, शिकार का त्याग। जिसमें तीव्रता, उनका पहले ही त्याग होना चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह चोरी। यह माँस, मद्य, वैश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री। इन सात का त्याग न हो, यदि राग में तीव्रता हो तो उसे धर्मनिष्ठपने की परीक्षा करने की योग्यता नहीं होती। इतना तो भाग उसे पहले से होता है। परन्तु यहाँ विशेष पंचम गुणस्थान के योग्य निरतिचार पालने की वृत्ति में यह भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया ? यह २३वीं हुई।

२४वीं। है न आठ मूलगुण, हों! वापस वे कहे, अकेले हम त्यागी। हमारे मूलगुण हैं, इसलिए हमारे समकित है, ऐसा नहीं है। अमरचन्दजी ! लो, हम आठ मूलगुण पालन करते हैं और मूलगुण है, वहाँ तक व्रतधारी हैं और व्रतधारी हों, उसे समकित तो होता ही है। ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहार सम्यग्दर्शन तो हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार सम्यग्दर्शन कहाँ से आया? निश्चय सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन का आरोप नहीं आता। कहाँ से आया?

निश्चय सम्यग्दर्शन, आत्मा के भान बिना व्यवहार समकित का आरोप नहीं दिया जाता। निश्चय होवे तो व्यवहार का आरोप दिया जाता है। निश्चय बिना व्यवहार अकेला होता नहीं। समझ में आया? मूलगुण पालते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (है), तो व्यवहार समकित हो गया, ऐसा। और व्यवहार समकित से आगे निश्चय समकित होगा। ऐसा अभी लिखते हैं सब जोरशोर से लिखते हैं। पत्रों में जोरशोर से आता है अभी। सातवें गुणस्थान तक व्यवहार मोक्षमार्ग है। एक व्यक्ति और तेरहवें में लिखता है। कहो, समझ में आया? बहुत प्रकार है। और, एक व्यक्ति कहता है कि नहीं, एक शुद्ध पर्याय प्रगट हुई और थोड़ी अशुद्ध। दो को तुम कहकर एक शुद्धि वह निश्चयमार्ग और राग, वह व्यवहारमार्ग (कहते हो), (परन्तु) ऐसा है ही नहीं। उन दो पूरी पर्याय को व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आता है। और एक व्यक्ति ऐसा जगा है। आहाहा! .... ऐसी। समझ में आया? ऐसा नहीं है।

जितनी स्वचैतन्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट हुई है, वही वास्तव में संवर, निर्जरा और मोक्ष का मार्ग है। एक ही पर्याय के दो भाग हैं। जितना स्वरूप के आश्रय से चारित्र हुआ, उतनी शुद्धता है। वह मोक्ष का मार्ग है। उसी पर्याय में जितनी अशुद्धता रह गयी है, एक पर्याय के दो भाग। आहाहा! कहो, दो भाग में एक मोक्षमार्ग और एक बन्धमार्ग। समझ में आया? आहाहा! वह कहता है कि नहीं, ऐसा नहीं है। पूरी पर्याय हो, तब मोक्षमार्ग कहलाता है। अधूरी में पूरा व्यवहार मोक्षमार्ग कहो। ऐ! व्यवहार तो पराश्रित कहलाता है। और जितनी स्वाश्रित दशा हुई, उसे पराश्रित व्यवहार में डाल देना है? समझ में आया? धन्नालालजी! स्वाश्रय को व्यवहार को और पराश्रय को व्यवहार। तो स्वाश्रय निश्चय और पराश्रय व्यवहार, यह सिद्धान्त रहा नहीं। स्व-आश्रित निश्चय और पराश्रित व्यवहार। अतः जितना स्व-आश्रित प्रगट हुआ—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे व्यवहार कहना और पराश्रित राग को व्यवहार कहना, ऐसा नहीं हो सकता।

भगवान आत्मा अपना चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव, परमानन्द की नित्य ज्योति, उसके लक्ष्य से, दृष्टि से, ध्येय से, जितनी निर्मल परिणति प्रगट हुई, उतना तो संवर,

निर्जरा और मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? और उसी पर्याय में अभी यह षट्कर्मादि श्रावक को, मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का भाव आदि जो आते हैं, वह पर्याय का भाग बन्ध का ही कारण है। आहाहा! हो। हो तो कहते हैं, उसकी भूमिका में होता है। होने पर भी वह बन्ध का कारण है। ज्ञानधारा और कर्मधारा एकसाथ चलती है। कहो, समझ में आया? ज्ञानधारा कहो या स्व-आश्रय दृष्टि, ज्ञान और लीनता कहो। तथा कर्मधारा कहो या रागधारा कहो। जितना राग उत्पन्न होता है, उतनी कर्मधारा है। जितना स्वभाव के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान-निर्मलता प्रगट हुई है, वह ज्ञानधारा। ज्ञान अर्थात् रागधारा नहीं। ज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरता अर्थात् ज्ञानधारा। जितना पराश्रित राग आता है, उतनी कर्मधारा। यह एक समय में, दोनों एक क्षण में साथ में होते हैं। एक क्षण में दोनों। तथापि एक भाग शुद्धता मोक्ष का कारण और अशुद्धता, वह बन्ध का कारण है। ऐसा न होवे तो वस्तु किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया? २४वीं।

गाथा २४

अणुव्रतानि पंचैव त्रिप्रकारं गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि द्वादशेति गृहिव्रते।।२४।।

अर्थ : पाँच प्रकार के अणुव्रत तथा तीन प्रकार के गुणव्रत और चार प्रकार के शिक्षाव्रत ये बारहव्रत गृहस्थों के हैं।।२४।।

गाथा - २४ पर प्रवचन

अणुव्रतानि पंचैव त्रिप्रकारं गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि द्वादशेति गृहिव्रते।।२४।।

बारह व्रत की व्याख्या की। पाँच प्रकार के अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह। इनकी मर्यादा। और **'पंचैव त्रिप्रकारं गुणव्रतम्'** इन तीनों को गुणव्रत कहते हैं। देशावगाशिक, दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड ये गुण करते हैं।

किसे ? उस व्रत को गुण करते हैं। आहाहा! भाषा, वह भी (समझना कठिन)। स्वभाव को गुण करते हैं, ऐसा नहीं। जो व्रत के विकल्प हैं, सत्य का, अहिंसा का, अचौर्य का, ब्रह्मचर्य आदि का जो शुभराग है, उसमें यह व्रत का भाग, वह शुभराग है। भले उतरे, उतरने के लिये तो करते हैं यहाँ। ऐसा कहते हैं, इसमें उतरते हैं तो बाहर जाएगी बात। यहाँ ढ़िंढ़ोरा पीटकर बात चलती है। कहो, समझ में आया?

उसमें जैसे आठ मूलगुण आये थे, उसी प्रकार यहाँ तीन गुणव्रत आये। इसका अर्थ कि जितना राग मन्द करके पाँच अणुव्रत हुए हैं, उसे यह तीन गुणव्रत है, वह राग की मन्दता में वृद्धि करते हैं, परन्तु है तो राग। बारह ही व्रत है तो राग। आहाहा! एक कहे—मुख्य, वह निश्चय और गौण, वह व्यवहार। मुख्य त्रिकाली ज्ञायकभाव दृष्टि में आवे, उस मुख्य को निश्चय कहने में आता है। और बाकी सब रहा, उस पर्याय राग को व्यवहार कहा जाता है। और श्रावक हो तब कहे, व्रतों में उसे आठ मूलगुण होते हैं परन्तु उस मूलगुण की व्याख्या—राग की मन्दता के भाव को मूलगुण कहा जाता है। आत्मा को शान्ति का लाभ करे या संवर-निर्जरा (हो), उसकी यह व्याख्या है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ त्याग है? भान बिना? स्वद्रव्य के अवलम्बन बिना, उसे राग का यथार्थ त्याग नहीं हो सकता। क्योंकि जिसकी दृष्टि ही राग में पड़ी है। कहो, समझ में आया? देखो! दृष्टि २३वें तो आ गयी है। दृष्टिपूर्वक। समझ में आया?

चैतन्य के मूलस्वभाव के अवलम्बनपूर्वक जिसे यह आठ मूलगुण होते हैं, उन बारह व्रत को वे मूलगुण पुष्टि करते हैं। और अब बारह व्रत में भी जो पाँच अणुव्रत हैं, उसमें विस्तार बहुत किया है, शोभालालभाई! उसमें विस्तार बहुत सब किया है। बहुत लम्बा-लम्बा किया है। ... व्याख्या की है। यह दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्ड, ये तीन गुणव्रत। गुण अर्थात् इतनी राग की मन्दता करता है कि अमुक दिशा के बाहर नहीं जाना इत्यादि, वह पाँच अणुव्रत को पुष्टि देकर राग की मन्दता को गुण करता है। आत्मा को शान्ति का गुण करता है, वह यह बात है नहीं। आहाहा! राग की मन्दता को पुष्टि करता है। अमरचन्दजी! आहाहा!

चार शिक्षाव्रत है न? **'शिक्षाव्रतानि चत्वारि'** देशावगाशिक, सामायिक, प्रौषधोपवास और वैयावृत्य। ये चार शिक्षाव्रत हैं। ये हैं तो अभी विकल्प परन्तु वे जो पाँच अणुव्रत को गुण करनेवाले तीन कहे, उन्हें ही शिक्षा देनेवाले तीन कहे। अर्थात् राग की विशेष मन्दता में स्वभावसन्मुख का अभ्यास होता है, तब उसे राग की मन्दता में शिक्षा दे। घटाता है, घटाता है। राग घटता जाता है। समझ में आया? आहाहा! हो गया, लो! पाँच अणुव्रत और तीन व्रत लिये (इसलिए) हो गया गुण। और चार हो गये तो उसकी शिक्षा हो गयी आत्मा को। यहाँ तो आत्मा के सम्यग्दर्शन की शिक्षा और गुणसहित की बात है। ऐसा होता नहीं। अकेले विकल्प से आत्मा को गुण हो और अकेले विकल्प से आत्मा को शान्ति की शिक्षा मिले यह बात है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले के सीखने के पाठ हैं अभी। कहो, समझ में आया? ऐ... रतिभाई! यह अणुव्रत की बात चली। नेमिदासभाई! कहो, यह अणुव्रत और गुणव्रत और शिक्षाव्रत। अरे! भगवान बापू! जहाँ दृष्टि सम्यक् है, उसे ऐसी भूमिका के योग्य राग की मन्दता का भाव आये बिना रहता नहीं। उस राग के प्रकार किये कि जिसे बारह व्रत के विकल्प हैं, उसे आठ मूलगुण का मूल कहने में आता है और बारह व्रत में भी पोषण देता है और उसे भी वे चार शिक्षा देते हैं। अर्थात् अधिक एकाग्रता होती है। स्वभाव की एकाग्रता तो स्वयं के आश्रय से होती है परन्तु इस राग की मन्दता का भाग अधिक बढ़ता है, इसलिए उन्हें—तीन को गुणव्रत कहा। है तो बारह व्रत विकल्प। आहाहा! सेठी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में मन्दता। उसे यहाँ है तो पुण्यबन्ध का कारण। बारह व्रत का स्वरूप क्या है, उसकी स्थापना होती है और दृष्टि में उसका निषेध है, ऐसी उसकी स्थापना होती है। नवनीतभाई! दृष्टि में उसका आदर नहीं होता। निश्चय स्वभाव के आदर के अतिरिक्त राग आवे, वह निश्चय से उपादेय है—ऐसा है नहीं। व्यवहार से उपादेय अशुभ टालने के लिये कहने में आता है। निश्चय उपादेय स्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दर्शनपूर्वक है और यह इच्छा और गुण राग की मन्दता को करता है, इतनी बात यहाँ सिद्ध करनी है। **'द्वादशेति गृहिव्रते'**

अब २५। अब तप आया, तप। पाँचवाँ बोल तप। श्रावक को हमेशा तप होता है। पाँचवाँ बोल, षटकर्म में पाँचवाँ। यह षट्कर्म की बात चलती है या नहीं? रतिभाई! यह सब पढ़ा है या नहीं यह?

गाथा २५

पर्वस्वथ यथाशक्ति भुक्तित्यागादिकं तप:।
वस्त्रपूतं पिबेत्तोयं रात्रिभोजनवर्जनम्।।२५।।

अर्थ : अष्टमी-चतुर्दशी को शक्ति के अनुसार उपवास आदि तप, तथा छने हुए जल का पान और रात को भोजन का त्याग भी गृहस्थों को अवश्य करना चाहिए॥२५॥

गाथा - २५ पर प्रवचन

पर्वस्वथ यथाशक्ति भुक्तित्यागादिकं तप:।
वस्त्रपूतं पिबेत्तोयं रात्रिभोजनवर्जनम्।।२५।।

देखो! श्रावक का पाँचवाँ कर्तव्य। व्यवहार से कर्तव्य कहा जाता है न? निश्चय से तो **'जं कज्जं तं णियमं'।** नियम से करनेयोग्य वह तो आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, यह निश्चय से करनेयोग्य वह वास्तविक आवश्यक है। यह आवश्यक व्यवहार से आवश्यक कहा जाता है। जिसमें पराधीनता है, उसे व्यवहार से आवश्यक कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? नियमसार में शुभभाव को भी अनावश्यक कहा है। उससे पराधीनता होती है। व्यवहार से उसे आवश्यक कहकर, राग की मन्दता कहकर आवश्यक कहने में आया है। ओहोहो! तप—अब तप।

अष्टमी चतुर्दशी को शक्ति अनुसार... अष्टमी और चौदश को शक्ति अनुसार

उपवास आदि करना चाहिए। इतना राग इसे घटना चाहिए। और **छने हुए जल का पान...** समझ में आया? (छना हुआ) पानी पीना। गाणेलुं। गाणेलुं कहते हैं न? छना हुआ। हमारी भाषा में गाल्यु पानी, गाणेलुं पानी। कपड़े से छना हुआ पानी। यह श्रावक के पंचम गुणस्थान के योग्य (विकल्प आता है)। काठियावाड़ी भाषा में ऐसा है। गणेलुं पानी। छना हुआ। छना हुआ कहो। समझे न? **छना हुए जल का पान...** अर्थात् वस्त्र में छानकर उसका उपयोग (करना)। ऐसा शुभराग का भाव तप की भूमिका में यहाँ तप के कर्तव्य में यह लिया है। समझ में आया?

रात को भोजन का त्याग... पंचम गुणस्थान में षट्कर्म में रात्रिभोजन का त्याग। रात्रिभोजन (में) तो बहुत जीव-जन्तु मरते हैं। समझ में आया? लो! रात्रि में खाये नहीं और दूध और रबड़ी पीवे, ऐसा सुना है। ऐसा नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं, रात्रिभोजन का इतना राग मन्द पड़कर त्याग ही होता है। पंचम गुणस्थान के योग्य... मित्रसेनजी! दृष्टिर्पूक, भानपूर्वक उसे रात्रिभोजन का गृहस्थाश्रम के योग्य पंचम गुणस्थानवाले को रात्रिभोजन का त्याग (होता है)। बहुत जीव मरते हैं। कढ़ी-खिचड़ी खाता हो, दाल और सब्जी खाता हो, उसमें कितने जीव मरते हैं। उस प्रकार का बहुत... कोई कहे कि हम तो दीपक जलाकर (खाते हैं)। परन्तु जीवांत इतनी होती है, उसकी यत्ना हो नहीं सकते। समझ में आया? धर्मी जीव को रात्रिभोजन का त्याग होता है। उसकी भूमिका प्रमाण राग की ऐसी मन्दता आये बिना नहीं रहती। रात्रि में खाने की गृद्धि नहीं होती। समझ में आया?

अवश्य करना चाहिए। लो! **भोजन का त्याग भी...** देखो! भोजन में फिर चारों ही, हों! ... आहार, पानी ले, रबड़ी, सबका त्याग। समझ में आया? रात्रि में भुजिया उड़ावे और कन्दमूल के... कन्दमूल को क्या कहते हैं? कन्दमूल। आदु के, उस आलू के, आलू के। नहीं-नहीं, यह श्रावक के योग्य नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! ऐसे कन्दमूल, आलू, शकरकन्द की सब्जी ऐसा उसे नहीं हो सकता। रात्रिभोजन का त्याग होता है। समझ में आया? छोटे जीव कैसे आते हैं, मुँह में छोटी जीवांत (आ जाए)। उसमें चातुर्मास में तो मच्छर इतने बारीक कि ग्रास लेने जाए तो मच्छर ग्रास में चिपककर गिर जाए। खा जाए ग्रास में साथ में। समझ में आया? और यह बीड़ी।

मुमुक्षु : ऊपर पंखा रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंखा रखे तो जीवांत गिरे, एकदम गिरे अन्दर उसमें। और यह तम्बाकू, बीड़ी में कितनी बारीक त्रस जीवांत होती है, यह बीड़ी पीवे तो त्रस की बीड़ी। धुआँ। समझ में आया? ... त्रस का त्याग चाहिए। जिसमें त्रस मरते हैं वह ... त्याग चाहिए। कहो, समझ में आया? यह तप के अन्दर कहा, देखा? यह तप की व्याख्या में लिया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की बात जैसी हो, वैसी तो कही जाए या नहीं? उसका व्यवहार श्रावक का ऐसा होना चाहिए। निश्चय का होवे, तब निश्चय का और व्यवहार का होवे, तब व्यवहार का, दोनों वस्तु उसके स्थान में होना चाहिए। समझ में आया? इसलिए तो यह अधिकार लिया है। एक बार वाँचन हुआ है तो फिर से इस बार लिया है। यह सब बहुत चला है न! वस्तु समझनेयोग्य है। ऐसे का ऐसा रात्रि में पिये और खाये... समझ में आया? रास्ते में कन्दमूल के और आलू के भुजिया खाये और अपन कहीं कुछ कर्ता-हर्ता नहीं। वह तो जड़ की क्रिया है। मर जाएगा। यह तुझे किसने कहा?

मुमुक्षु : अपने बचाव के लिये ऐसा बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; बचाव के लिये। यह तो क्रमबद्ध आनेवाला था तो आया। मर जाएगा। क्रमबद्ध (का बहाना निकालेगा तो)। क्रमबद्धवाले की दृष्टि कहाँ होती है? जिसे द्रव्य की क्रमबद्धपर्याय कहे, उसे जिसने माना है, उसकी दृष्टि ज्ञायकभाव पर स्थिर हुई होती है। उसकी दृष्टि राग और निमित्त पर नहीं होती। अमरचन्दजी! यह क्रमबद्ध... क्रमबद्ध करते हैं न? अब क्रमबद्ध में तो अकर्तापने की दृष्टि होती है। समझ में आया? हमारे कुछ नहीं। एक व्यक्ति कहे, माँस खाये तो क्या इस निश्चयवाले को। अरे! मर जाएगा। माँस और शराब का त्याग न हो, वहाँ मिथ्यादृष्टिपना है। समझ में आया? दृष्टि में विपर्यास और अनन्तानुबन्धी का लोभ जिसका हो तो ऐसे माँस और शराब को खाने (पीने) के भाव नहीं हो सकते। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे प्रतिदिन काम करना है या कोई कहे तो काम करना है ? उसे स्वयं को काम करना है या किसी के कारण से करना है ? ऐसा कि प्रतिदिन ऐसा कहनेवाले होंवे न तो हम समझ सकें, पालन कर सकें। कहनेवाला कब तक खड़ा होगा ? अन्दर में गर्मी न जगे और सिगड़ी के ताप में कब तक अन्दर गर्मी रहेगी। सिगड़ी कहते हैं न अग्नि की ? वह कहीं कोठे से बँधती है सिगड़ी ? गर्मी अन्दर में तेज के और मावा न खाकर गर्मी प्रगट करना चाहिए। ऐसी यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान द्वारा पुरुषार्थ की उग्रता करनी चाहिए। किसी का क्या काम है ? दुनिया उसे घर में। भगवान उपदेश भगवान में रहा। तू न करे तो भगवान का उपदेश क्या करेगा ? समझ में आया ?

अब २६वीं।

गाथा २६

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माणि च नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखण्डनम्।।२६।।

अर्थ : सम्यग्दृष्टि श्रावक ऐसे देश को तथा ऐसे पुरुष को और ऐसे धन को तथा ऐसी क्रिया को कदापि आश्रय नहीं करते जहाँ पर उनका सम्यग्दर्शन मलिन होवे तथा व्रतों का खंडन होवे॥२६॥

गाथा - २६ पर प्रवचन

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माणि च नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखण्डनम्।।२६।।

देखो ! यह तप में डाला है, हों ! ओहो ! सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्मात्मा को उस **देश को छोड़ देना चाहिए।** जिस देश में सम्यग्दर्शन को दिक्कत आवे, बाधा और व्रत को दिक्कत आवे, वह देश छोड़ देना चाहिए। देश-देश। देश का त्याग। यह परदेश, देखो

न! जहाँ परदेश माँस और शराब के खानेवाले, उनके साथ रहना और उन सब देश में श्रद्धा का ठिकाना नहीं रहता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़ों रुपये पड़े रहे वहाँ उसके घर में। गोवा में। मुकुलभाई आये है न। यह तुम्हारे भाई की बात चलती है। क्या करना इसमें? वहाँ वह देश ही खराब है। वहाँ बात नहीं कहता था एक व्यक्ति? कि कन्दमूल में क्या जीव घुस गया? कन्दमूल में आलू (आवे) तो खाओ-खाओ आलू, कहे। अरे! उसमें अनन्त जीव हैं। उसमें जीव कहाँ गिर गये? अरे! जीव तो वह स्वयं अनन्त जीव है। त्रस की कहाँ बात चलती है। परदेश-देश जिसमें माँस और शराब और जिसमें अधर्म के स्थान (हों), धर्मी जीवों को उस देश को छोड़ देना चाहिए। समझ में आया?

जिसमें सम्यग्दर्शन की मलिनता का कारण हो और व्रत के भंग के कारण दिखते हों, ऐसे देश में रहना नहीं चाहिए। **'तं देशं'** कहो, समझ में आया? उस पुरुष को। ऐसे पुरुष को छोड़ देना चाहिए। कुगुरु, कुशास्त्र की ऐसी बातें करे कि जिसमें श्रद्धा को भंग कर डाले और व्रत के आचरण में नुकसान करे, ऐसे पुरुष को भी छोड़ देना चाहिए। छोड़ना अर्थात् उनके प्रति राग छूटे तो छोड़ा, ऐसा चरणानुयोग की पद्धति में कहने में आता है। समझ में आया? ऐसे पुरुष का संग छोड़ देना, जिसमें से श्रद्धा और राग व्रत में अन्दर में मलिनता दिखाई दे, वह संग नहीं करना। समझ में आया? शास्त्र के नाम को लेकर ऐसे कुतर्क घुसा डालेगा कि श्रद्धा भ्रष्ट हो जाएगा।

ऐसे धन को... ओहो! **'तत्स्वं'** है न? **'स्वं'** अर्थात् धन। सेठ! धन-धन। **'स्वं'** है न? भाई! **'स्वं'। 'स्वं'** अर्थात् धन। उस धन को छोड़ देना कि इसमें तुमको पचास लाख मिलेंगे, इसमें इतने का व्यापार होगा। अरे! चल... चल...। धर्मात्मा श्रावक ऐसे धन को छोड़ देता है। हम भूखे पेट रहेंगे परन्तु ऐसे धन को हम संग्रह नहीं करेंगे। समझ में आया? देखो! एक स्त्री ऐसी है। वह पाँच करोड़ लेकर आती है। उसके साथ विवाह कर, भोग ले। हमको यह नहीं होगा। हमको—सज्जन को यह नहीं होगा। वह पाँच करोड़ हो या दस करोड़ हो, वह परस्त्री नहीं (होगी)। उसका संग छोड़ दे। लक्ष्मी मिलती हो, ऐसे अनाचरण सेवन करके, उस लक्ष्मी को भी छोड़ दे।

उस लक्ष्मी की दरकार नहीं करता। बापू! यह तो श्रावक के व्रत हैं। समझ में आया? धर्मी होकर वीतराग के मार्ग में चलना है, उसे कहते हैं कि ऐसे पुरुष को और ऐसे धन को छोड़ दे। भाग रखकर... नहीं रखते सब? माँस का व्यापार और यह डिब्बे बेचते हैं न? नहीं बेचते? क्या कहलाता है? बहुत ग्राहक होवे न अच्छे? लेने आवे तो माँस लेने आवे। वे डिब्बे माँसवाले होते हैं न, माँस भरे हुए? पैकबन्ध आते हैं। उस पैकबन्ध का धन्धा, उस धन को छोड़ दे। श्रावक को ऐसा धन्धा नहीं होता। मछली पैकबन्ध आती है। ग्राहक आवे न? दो चीज़ लिखी हो..

मुमुक्षु : गन्ध मारे...

पूज्य गुरुदेवश्री : गन्ध नहीं मारे परन्तु अन्दर... कितनी जीवांत पड़ी है, माँस है। श्रावक का वह व्यापार नहीं हो सकता। उसमें से करोड़ों की आमदनी होती हो, तो भी उस धन को छोड़ दे। कहो, समझ में आया? मलूकचन्दभाई! है इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि सब लहर करते हों, उसमें यह चिन्ता उत्पन्न करे। यह नहीं... यह नहीं... आहाहा!

'तत्कर्माणि' ऐसी क्रिया का कदापि आश्रय नहीं करे। समझ में आया? जिसे माँस के-शराब के व्यापार में से ऐसी क्रिया और उसमें से कुछ लाभ (होवे तो भी) वह क्रिया नहीं। भाई! अपन कहाँ काटते हैं? वह तो दूसरे लोग काटते हैं। अपने को तो सीधे बेचना है। अपने कहाँ? अपने को तो हुकम कर देना है कि इसे पाँच हजार का देना, दो हजार का माँस देना। अरे! मर जाएगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम नहीं दे। नाम नहीं दे क्या? उसका दूसरा नाम दे। भाव में क्या है? परस्त्री का वह करे - दासापणा करे, वैश्यापना करे। और वैश्या करता हो, उसका पैसा लेकर स्वयं उसे मदद करे। ऐसी क्रिया श्रावक को नहीं हो सकती। समझ में आया? यह सवेरे सम्यग्दर्शन की बात चलती है और दोपहर में यह आचरण की बात चलती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ , ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोड़ देना परन्तु पहला... अभी तीव्र राग न छोड़े तो वह मन्द राग किस प्रकार छोड़ेगा? तीव्र राग छोड़कर उसे ऐसे मन्द राग आये बिना नहीं रहता। यह मधु का व्यापार... क्या कहलाता है? इत्र का व्यापार श्रावक को नहीं होता। एक बिन्दु में कितना पाप! ऐसे आचरण के कर्तव्य श्रावक नहीं करता। समझ में आया?

एक पत्र में आता है कि भूखे रहेंगे परन्तु हम ऐसे अनाचरण नहीं करेंगे। एक पत्र में आता है, श्रीमद् में आता है। ओहो! तुम्हें अच्छे वाक्य लिखे। पेट में भूखे रहेंगे परन्तु हम अनाचरण का सेवन नहीं करेंगे। ऐसे आचरण हमको न हो। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसी क्रिया और सम्यग्दर्शन मलिन और व्रत में खण्डन हो, ऐसा आचरण न हो।

गाथा २७

भोगोपभोगसंख्यानं विधेयं विधिवत्सदा।
व्रतशून्या न कर्तव्या काचित् कालकला बुधैः।।२७।।

अर्थ : आचार्य उपदेश देते हैं कि श्रावकों को भोगोपभोग परिमाणव्रत सदा करना चाहिए और विद्वानों को एकक्षण भी बिना व्रत के नहीं रहना चाहिए॥२७॥

गाथा - २७ पर प्रवचन

भोगोपभोगसंख्यानं विधेयं विधिवत्सदा।
व्रतशून्या न कर्तव्या काचित् कालकला बुधैः।।२७।।

'बुधैः' देखो, शब्द आया। **ज्ञानियों को श्रावकों को भोगोपभोग प्रमाण व्रत सदा करना चाहिए।** कुछ भी एक बार खानेयोग्य चीज़ हो, भोगने योग्य, स्त्री, गहने,

वस्त्र का प्रमाण करके हमेशा उसका व्रत थोड़ा भी होना चाहिए। **और विद्वान...** बुद्धि। **विद्वानों को एक क्षण भी बिना व्रत के नहीं रहना।** ऐसा त्याग तो उसे होना चाहिए।

२८ (गाथा)।

गाथा २८

रत्नत्रयाश्रयः कार्यस्तथा भव्यैरतन्द्रितैः।
जन्मान्तरे ऽपि तच्छ्रद्धा तथा संवर्धते तराम्।।२८।।

अर्थ : आलस्यरहित होकर भव्य जीवों को उसी रीति से रत्नत्रय का आश्रय करना चाहिए जिससे दूसरे-दूसरे जन्मों में भी उसकी श्रद्धा बढ़ती ही चली जाये ॥२८॥

गाथा - २८ पर प्रवचन

रत्नत्रयाश्रयः कार्यस्तथा भव्यैरतन्द्रितैः।
जन्मान्तरे ऽपि तच्छ्रद्धा तथा संवर्धते तराम्।।२८।।

धर्मी को **आलस रहित होकर भव्य जीवों को उस तरीके से रत्नत्रय का आश्रय करना चाहिए।** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। अपने स्वभाव का आश्रय करके और इस व्यवहार में भी ऐसे राग का भाव आये बिना नहीं रहता। **जिससे दूसरे -दूसरे जन्मों में...** ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान के संस्कार डाले (कि) भविष्य में भी वह सम्यग्दर्शन चला न जाए। समझ में आया? लम्बावे। वहाँ स्वर्ग में जाए, वहाँ भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के संस्कार रहे। **दूसरे-दूसरे जन्म में भी उसकी श्रद्धा बढ़ती चली जाए।** ऐसे रत्नत्रय का इसे जरूर आश्रय करना चाहिए।

मुमुक्षु : परम्परा...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह परम्परा। श्रद्धा और ज्ञान परम्परा रहे। ऐसी दृढ़ता और ज्ञान और चारित्र के संस्कार डालना चाहिए कि भविष्य में भी वे संस्कार खड़े रहें। क्या कहलाये भाई?

गाथा २९

विनयश्च यथायोग्यं कर्तव्य: परमेष्ठिषु।
दृष्टिबोधचरित्रेषु तद्वत्सु समयाश्रितै:।।२९।।

अर्थ : जो जिनेन्द्र के सिद्धान्त के अनुयायी हैं उन भव्य जीवों को योग्यतानुसार, जो उत्कृष्ट स्थान में रहनेवाले हैं, ऐसे परमेष्ठियों में विनय अवश्य करनी चाहिए तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में और इनके धारण करनेवाले महात्माओं में भी अवश्य विनय करना चाहिए॥२९॥

गाथा - २९ पर प्रवचन

विनयश्च यथायोग्यं कर्तव्य: परमेष्ठिषु।
दृष्टिबोधचरित्रेषु तद्वत्सु समयाश्रितै:।।२९।।

लो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक धर्मात्मा को ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारकों के प्रति यथायोग्य विनय करना चाहिए। यह तप में डाला, देखा! अपने से धर्म में बढ़े हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में हों, उनका विनय **'यथायोग्यं कर्तव्य: परमेष्ठिषु' 'समयाश्रितै:'** वे धर्म को अवलम्बन कर रहे हुए हैं, उनकी इस प्रकार विनय करना, बहुमान करना। उनका अनादर करना नहीं। धर्म, धर्मी के बिना नहीं होता। ऐसे धर्मी के प्रति आदर और विनय तथा बहुमान उनका होना चाहिए। यह श्रावक का खास उसका कर्तव्य है। विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)